ओ३म्



सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला

समुल्लास 6 पर आधारित

राज्य व्यवस्था

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर

मूल्य 5.50

Scanned with CamScanner

प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य) द्वारा संपादित
सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 पुष्प

भाग	नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	ईश्वर एक नाम अनेक	प्रो. बुद्धि प्रकाश आर्य	3.00
2.	आदर्श माता–पिता	प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु	3.00
3.	शिक्षा और चरित्र निर्माण	प्रो. भूदेव शास्त्री	4.00
4.	गृहस्थाश्रम का महत्त्व	आचार्य ओंकार मिश्र प्रणव	3.00
5.	संन्यासी कौन और कैसे हो ?	रासासिंह विद्यावाचस्पति	3.00
6.	राज्य व्यवस्था	प्रो. प्रशान्त कुमार वेदालंकार	5.50
7.	ईश्वर और वेद	डॉ. सूर्यदेव शर्मा, डी. लिट्	4.00
8.	जगत् की उत्पत्ति	डा. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	4.00
9.	स्वर्ग और नरक कहाँ है ?	पं. यशपाल, आर्य बन्धु	4.00
10.	क्या चौके चूल्हे में धर्म है ?	प्रो. देव शर्मा वेदालंकार	3.00
11.	हिन्दू धर्म की निर्बलता	प्रो. भवानीलाल भारतीय	4.00
12.	बौद्ध और जैन मत	पं. मंजुनाथ शास्त्री	3.00
13.	वेद और ईसाई मत	श्री रामस्वरूपजी रक्षक	3.00
14.	इस्लाम और वैदिक धर्म	डा. श्रीराम आर्य	4.00
15.	सत्य का अर्थ तथा प्रकाश	प्राचार्य दत्तात्रेय वाब्ले	3.00

आचार्य दत्तात्रेय जी आर्य द्वारा लिखित पुस्तकें

1.	आचार संहिता	1.00
2.	आर्य समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं	50.00
3.	हमारी राष्ट्रीयता का आधार	2.00
4.	देश धर्म और हिन्दू समाज को आर्य समाज की देन	1.00
5.	मेरी तीसरी विदेश यात्रा के संस्मरण	6.00
6.	आर्य शिक्षण संस्थाओं का भविष्य	5.00
7.	दा आर्य समाज (The Arya Samaj)	2.00
8.	आर्य शिक्षण संस्थाओं की परिचय निर्देशिका	12.00
9.	आर्य समाज का वर्तमान और भविष्य	10.00
10.	The Arya Samaj Hindu without Hinduism	125.00
11.	आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता	8.00
12.	कर्मवीर पं. जियालाल का संक्षिप्त जीवन चरित्र	5.00

अन्य प्रकाशन

1.	आर्य समाज अजमेर का इतिहास	50.00
2.	सांस्कृतिक कार्यक्रम पथ दर्शिका	30.00
3.	अजमेर की आर्य शिक्षण संस्थायें	3.00
4.	धर्म शिक्षा (भाग 1 से 11 तक) सैट (20% कमीशन)	100.00
5.	सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ माला (सैट) (20% कमीशन)	20.00

प्राप्ति स्थान **आर्य समाज, अजमेर**

Scanned with CamScanner

ओ३म्

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला—भाग ६

राज्य व्यवस्था

लेखक :

डॉ. प्रशान्त वेदालंकार, एम.ए., पी एच.डी.

हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली

सम्पादक :

दत्तात्रेय वाव्ले आर्य

पू. प्रिंसिपल, दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज, अजमेर

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर

तृतीय संस्करण

वर्ष 1999 | प्रतियाँ 2000 | मूल्य : 5.50 पैसे

Scanned with CamScanner

डॉ. सूर्यदेव शर्मा

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित इस सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के लिए आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आर्य समाज अजमेर के मन्त्री श्रीयुत डॉ. सूर्यदेव शर्मा, शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए., एल. टी., डी. लिट् ने रुपये १०,००० की राशि आर्य समाज, अजमेर को दान में दी है। इस अनुकरणीय और उदार सहायता के लिये आर्य समाज की तथा अपनी ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

दत्तात्रेय आर्य

प्रधान

आर्य समाज, अजमेर

मुद्रक : **श्री आर्य प्रिण्टर्स**, केसर गंज, **अजमेर**
दूरभाष : 431464, 424850

Scanned with CamScanner

प्रस्तावना

ऋषि दयानन्द सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के विचारक थे। स्वभावतः राजनीति शास्त्र पर भी उनका गहरा चिन्तन था। हमारे विश्वविद्यालयों में राजनीति शास्त्र का अध्ययन अभी तक प्रायः प्लेटो, अरस्तु, हॉब्स, लॉक, रूसो से लेकर मिल, ग्रीन, हीगल तथा कार्ल मार्क्स आदि पाश्चात्य लेखकों के विचारों तक ही सीमित था और परिणामस्वरूप मनु और कौटिल्य के नाम मात्र के अध्ययन को छोड़कर राजनीतिक शास्त्र के पाठ्यक्रमों में किसी भारतीय दार्शनिक का अध्ययन नहीं किया जाता था।

महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण, जवाहरलाल नेहरू अथवा तिलक और गोखले आदि का अध्ययन भी राजनैतिक नेताओं के रूप में ही होता था। साधारणतः यह समझा जाता है कि राज्य की उत्पत्ति उसके कार्य और कर्त्तव्य तथा व्यक्ति और समाज का राज्य से सम्बन्ध आदि के बारे में सैद्धान्तिक और तात्विक विवेचन करने वाले विचारक ही राजनीति शास्त्र के अध्ययन में स्थान पा सकते हैं। इस माप दण्ड के आधार पर भी स्वामी दयानन्द का आधुनिक भारतीय राजनैतिक विचारकों में अपना विशिष्ट स्थान है। इसीलिए मेरे प्रस्ताव पर राजस्थान विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के एम.ए. के एक पाठ्यक्रम में दयानन्द के विचारों का भी समावेश किया गया।

इस प्रश्न के उत्तर में कि—क्या संस्कृत में पूरी राजनीति है या अधूरी है—स्वामीजी की मान्यता थी कि संस्कृत में राजनीति का पूरा साहित्य है। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में इसीलिये राज्य धर्म, अर्थात् राज्य के कर्त्तव्य और कार्यों का प्रायः सारा विवरण विदुर और शुक्र नीति तथा शान्तिपर्व और विशेष कर मनुस्मृति पर आधारित है। उसमें स्वामीजी ने स्वयं अपने स्वतन्त्र चिन्तन को विशेष स्थान नहीं दिया है। किन्तु राजा व राज्य की उन्होंने जो परिभाषा की है। वह न केवल आधुनिक विचार धारा से मिलती है अपितु उसे हम उसके राजनीति दर्शन का मौलिक चिन्तन कह सकते हैं। जैसा इस पुस्तिका के विद्वान् लेखक—जो स्वयं राजनीति शास्त्र के प्राध्यापक हैं, ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

Scanned with CamScanner

वर्तमान प्रजातन्त्र में जिस प्रकार प्रभुसत्ता को 'सॉवरेन्टी' अर्थात् सॉवरेन याने राजा का अधिकार कह कर भी हम उसे प्रजा में निहित प्रभुसत्ता मानते हैं उसी प्रकार दयानन्द ने राजा शब्द का प्रयोग जनता द्वारा चुने हुए शासक के अर्थ में ही किया है, न कि शाश्वत और ईश्वर द्वारा अधिकृत व्यक्ति के रूप में। उनकी सम्मति में राजा और सभापति पर्यायवाची हैं। ऐसे निर्वाचित राजा को भी उन्होंने एकाधिकार देने का विरोध किया है और चेतावनी दी है कि अंकुश के बिना "राजा स्वाधीन और उन्मत्त होकर प्रजा का नाशक होता है" उनकी यह मान्यता थी कि "न्याय युक्त दण्ड का ही नाम राजा है" दूसरे शब्दों में राजा किसी व्यक्ति विशेष का सूचक वे नहीं मानते थे, किन्तु न्याय और दण्ड के आधार पर स्थापित शासन व्यवस्था को ही, वे राज्य या राज्य व्यवस्था मानते थे। इस प्रकार के राजा को भी दण्ड देने का अधिकार सभा अर्थात् जन प्रतिनिधियों को है यह स्पष्ट घोषणा करके उन्होंने राज्य व्यवस्था को बदलने के जनता के अधिकार को मान्यता दी है। प्रजातन्त्र के इन मूलभूत सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए स्वामीजी ने उसके विकृत और दोष पूर्ण होने की सम्भावना के प्रति भी चेतावनी दी है। स्वामीजी केवल हाथों और सिरों की संख्या के बहुमत को प्रजातन्त्र का आधार नहीं मानते थे। संख्या के साथ ही आवश्यक योग्यता और गुणों को भी वे अनिवार्य समझते थे। इसीलिये उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जन प्रतिनिधि तथा सभा के सदस्य और स्वयं राजा अर्थात् शासक चरित्रवान, शिक्षित, योग्य और निस्वार्थ व्यक्ति ही होने चाहिये। उनके शब्दों में – "सहस्त्रों, लाखों, करोड़ों अज्ञानी मिलकर जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये और सभा में कभी मूर्खों को भर्ती नहीं करना चाहिये" – आज हमारे देश की राजनीति और शासन व्यवस्था में जो विकृतियाँ आ गई हैं वे स्वामीजी द्वारा दी गई इस चेतावनी के औचित्य को सिद्ध करती है।

दत्तात्रेय आर्य

सम्पादक

Scanned with CamScanner

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द द्वारा व्यापक अर्थ में प्रतिपादित धर्म समाज और राजनीति से पृथक् नहीं है, इसका प्रमाण सत्यार्थ प्रकाश का षष्ठ समुल्लास है। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में राजनीति के जिन महान् तत्त्वों का निरूपण किया है, वे आज भी राजनीतिज्ञों का मार्ग दर्शन कर सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास का प्रारम्भ 'अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः' कह कर किया है। इस समुल्लास को पढ़कर मनुष्य की यह भ्रान्त धारणा नष्ट हो जाती है कि पहले निरंकुश एवं स्वच्छन्द राजाओं का राज्य था। और यह कि समुचित राज्य व्यवस्था एवं प्रजातन्त्र और सिद्धान्तों का क्रियात्मक प्रयोग इसी युग में प्रारम्भ हुआ है सत्यसिद्ध नहीं होता। महर्षि दयानन्द ने इस समुल्लास में ऋग्वेदादि चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति, शुक्रनीति, विदुर प्रजागर, विदुर नीति तथा महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद् धर्म आदि के आधार पर राज्य व्यवस्था और प्रजातन्त्र का जो स्वरूप निर्धारित किया है, वह आज भी उपयोगी हो सकता है।

सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास के अतिरिक्त ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी महर्षि ने राजनीति का विवेचन किया है। महर्षि ने उदयपुर के महाराणा, शाहपुराधीश तथा जोधपुरादि के महाराजाओं को राज्य व्यवस्था एवं प्रजातन्त्र के स्वरूप को अपनाने के लिए प्रेरित किया था। बड़ौदा में राज दीवान माधवराव की प्रार्थना पर स्वामीजी ने राज धर्म पर एक व्याख्यान दिया, जिसे अंग्रेजी न जानने वाले के मुख से राजनीति के गम्भीर सिद्धान्तों की व्याख्या सुनकर ऊंचे अधिकारी दंग रह गये। महर्षि दयानन्द के राजनीतिक सिद्धान्तों का विशद् विवेचन

Scanned with CamScanner

हमने अपनी 'महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था' में किया है।

प्रस्तुत पुस्तक हमने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास के आधार पर लिखी है। इसमें पांच अध्याय हैं – (1) शासन व्यवस्था, (2) शासक और शासित, (3) रक्षा व्यवस्था, (4) अर्थ व्यवस्था, और (5) न्याय व्यवस्था। इन अध्यायों से महर्षि द्वारा प्रतिपादित राजनीति का एक चित्र हमारे सन्मुख प्रस्तुत हो जाता है।

मेरी यह पुस्तक उन सभी पाठकों को समर्पित है जो वर्तमान राजनीति का कोई सुनिश्चित रूप निर्धारित करने में प्रयत्नशील हैं। मुझे विश्वास है कि महर्षि के राजनीतिक विचार उन्हें राजनीति का ठीक स्वरूप निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होंगे।

मेरी इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में मेरी शिष्या कुमारी अरविन्द कौर ने सहयोग दिया है। मैं उसे साधुवाद देता हूं।

-प्रशान्त वेदालंकार

लेखक का संक्षिप्त परिचय

इस पुस्तिका के लेखक डॉ. प्रशान्त वेदालंकार आर्य समाज के प्रमुख विद्वान् लेखक हैं। राजनीति शास्त्र के प्राध्यापक है। आजकल हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली में सेवारत हैं। एक ओजस्वी एवं प्रतिभा सम्पन्न लेखक हैं। अन्य विषयों पर भी आपके लेख आर्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

Scanned with CamScanner

राज्य - व्यवस्था

महर्षि दयानन्द के राजनैतिक विचार

ऋषि दयानन्द आधुनिक भारत में स्वराज्य, स्वदेशी, स्वसंस्कृति और स्वभाषा के प्रथम स्वप्न–द्रष्टा थे। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में उन्होंने राजधर्म अर्थात् राज्य के कर्त्तव्यों की व्याख्या की है और अनेक ऐसे राजनैतिक सिद्धान्तों का विवेचन किया है जो आज भी स्वराज और सुराज्य दोनों की सफलता के लिए अनिवार्य प्रतीत होते हैं।

शासन - व्यवस्था

राजा की निरंकुशता का घोर विरोध

महर्षि दयानन्द राज्य के लिए एक राजा (शासक) का होना आवश्यक समझते थे। किन्तु राजा की निरंकुशता उन्हें असह्य थी। दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण के राष्ट्रमेव विश्याहन्ति '.....' आदि के आधार पर राजाओं की स्वाधीनता का खण्डन किया है जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिसलिए अकेला राजा स्वाधीन व उन्मत्त हो के प्रजा का नाशक होता है, अर्थात् वह राजा प्रजा को खाए जाता है, इसलिए किसी एक को रांज्य में स्वाधीन न करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

शासन के संचालन के लिए तीन सभाएँ

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के 'त्रीणि राजानः' आदि मन्त्र के आधार पर देश की राज्य–व्यवस्था के संचालन के लिए तीन सभाएं बताई हैं – विद्यार्य–सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा।

सभाओं के सदस्य और उनका सभापति राजा

इन तीनों सभाओं में अनेक सभ्य अर्थात् सदस्य होने चाहिए। अथर्ववेद १६.७.५५.६ के 'सभ्यःसभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः' के अनुसार जो सभा के योग्य सभासद् हैं वे सभा की व्यवस्था का पालन किया करें। राजा उन सभासदों में से एक होता है, अपनी योग्यता के आधार पर सभापति बना दिया जाता है।

दयानन्द की स्पष्ट घोषणा है कि 'एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति, तदधीन, सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन 'और प्रजा राजसभा के आधीन रहे'। अकेला राजा ही सब कुछ न हो इसके लिए दूसरा तर्क यह दिया है कि 'विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म हैं वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्य कर्म एक से कैसे हो सकता है, इसीलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है' कुछ अन्य स्थलों पर सभाओं की सर्वोच्चता प्रतिपादित की है–

Scanned with CamScanner

(क) जब तक सभासदों की अनुमति न हो तब तक राजा अपने मन से एक भी काम न करें।

(ख) सभा द्वारा निर्दिष्ट कर्म करके सभा द्वारा निर्दिष्ट अधिकार का उपयोग करके धर्म से प्रयुक्त राजा फल का उपभोक्ता होता है।

महर्षि दयानन्द का मत है कि राजकार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों की सभा हो। इनका यही काम है कि जितने–जितने व्यक्ति जिस काम में होवें नियमानुसार यथावत् काम करें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा सभाओं का एक सदस्य है। सभा के परामर्श से हो वह राजकार्य सम्पन्न करता है। इन सभाओं का उस पर पूर्ण अंकुश रहता है। ये सभाएं भी स्वतन्त्र अथवा निरंकुश नहीं हैं, इन पर प्रजा का अंकुश रहता है। इस प्रकार प्रजा पर इन सभाओं का और सभाओं पर प्रजा का अंकुश लगा कर इन सभाओं को भी स्वच्छन्द नहीं होने दिया।

सभासदों एवं सभापति का चुनाव

इन सभाओं में दो प्रकार के सदस्य होंगे–(१) राजपुरुष (२) प्रजापुरुष । राजपुरुष से अभिप्राय कुछ राज्याधिकारी तथा कुछ राजा द्वारा मनोनीत विशिष्ट क्षेत्रों के विशिष्ट 'व्यक्ति तथा प्रजापुरुष से अभिप्राय निर्वाचित सदस्यों से है। चुनाव के द्वारा ही सभा को प्रजाजन के अधीन रखना सम्भव है। प्रजा द्वारा चुने सभासद् मिलकर एक सभापति (जिसका नाम राजा था) का चुनाव करें।

Scanned with CamScanner

सभासदों की योग्यता

महाविद्वानों की विद्या–सभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों की धर्मसभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों की राजसभा के सभासदों में निम्नलिखित गुण अपेक्षित हैं –

१. सभा के सभासद् चारों वेद, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता हों। वेद समग्र जीवन के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण देते हैं। निरुक्त भाषा का समुचित प्रयोग करना सिखाते हैं तथा धर्मशास्त्र सदस्यों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक सदस्यों में जागृत करता है, ये तीनों ही तत्त्व राज्यजीवन के लिए अनिवार्य हैं।

२. चारों वेदों के विद्वानों से चारों विद्या–दण्डनीति आन्वीक्षिकी (न्याय–विद्या) आत्मविद्या (परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव) और वार्ता का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे ही सभा के सभासद् हों। आन्वीक्षिकी में विपत्ति और सम्पत्ति में बुद्धि की ठीक ठीक रखने का विधान है। आत्मविद्याओं द्वारा सद्गुणों को धारण करने एवं उन्हें व्यवहार में लाने का उल्लेख है। वार्ता में कहना और पूछना अर्थात् व्यावहारिक ज्ञान सिखाया जाता है।

३. सभासद् वही होने चाहिए जिन्होंने योगाभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही प्रजा को वश में रख सकता है। जितेन्द्रिय होने के लिए काम से दस और क्रोध से आठ उत्पन्न व्यसनों को छोड़ना आवश्यक है। जैसे दिन में सोना, काम कथा, परनिन्दा, स्त्रियों का अतिसंग, मादक द्रव्य (मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि), जलात्कार, डाह, ईर्ष्या (दूसरे की उन्नति से जलना), असूया (दोषों में गुण और गुणों में दोष), अर्थदूषण (अधार्मिक कार्यों में धनादि का व्यय), कठोर वचन, बिना अपराध कड़ा दण्ड।

Scanned with CamScanner

प्रजा को निर्देश है कि विद्या सभा, धर्म सभा और राज सभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों की स्थापना करें।

यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि भारत के वर्तमान संविधान में सदस्यों की किसी आवश्यक शैक्षणिक अथवा चारित्रिक योग्यता का उल्लेख नहीं है। दयानन्द की कल्पना के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शिक्षा (जिस में चरित्र की उन्नति विशेष रूप से होगी) प्राप्त करने का अवसर देना आवश्यक है। यदि कोई राज्य व्यक्ति को पूर्ण शिक्षा देने का अवसर दे सका तो सदस्य की शैक्षणिक एवं चारित्रिक योग्यता की शर्त स्वतः अनिवार्य हो जाएगी।

सभापति (राजा) की योग्यता (गुण)

सब सभासदों में जो सर्वोत्तम गुण, कर्म और स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो, सभ्यगण उसको ही राजसभा का पति मान के सब प्रकार से उन्नति करें। सभापति में कुछ विशेष गुण होने अपेक्षित हैं –

१. मनुष्य समुदाय में परम ऐश्वर्य एवं प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभाव युक्त अर्थात् जिसका आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व भव्य हो जिसका सब आदर करें।

२. प्रजाजन जिसके पास जाने में न झिझके तथा वह सबकी सहायता करने में सक्षम हो, जो सबका मित्र हो सके।

३. पक्षपात–रहित एवं पूर्ण विद्याविनय युक्त।

४. सभापति होने योग्य अर्थात् सारी सभा का संरक्षण एवं संचालन करने में समर्थ।

Scanned with CamScanner

राज्य के अन्य घटक

(क) समिति तथा सेना तीन सभायें और उनका एक सभापति निर्वाचित करने के उपरान्त उन सभाओं के अन्तर्गत कुछ समितियां तथा सेना आदि का गठन करना चाहिए–तं सभा च समितिश्च सेना च (अथर्व. १५।२।६।२)।

(ख) मन्त्रीमण्डल (कैबिनेट) राजा को सभासदों में से ही सचिव (मन्त्री) रखने का अधिकार है। किन्तु आवश्यकतानुसार यह संख्या घटाई बढ़ाई जा सकती है। मन्त्री (१) स्वराज्य अथवा स्वदेश में उत्पन्न (२) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता (३) शूरवीर (४) उच्च लक्ष्य वाले तथा (५) कुल आदि से सुपरिचित होने चाहिए। यह मन्त्रीमण्डल विशेष रूप से देश की रक्षा व्यवस्था के निमित्त है। राजा को इन विषयों पर सब का विचार अथवा अभिप्राय सुन कर बहुपक्षानुसार कार्यों में लग जाना चाहिए।

अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी

(क) मुख्य अधिकारी (१) राजा (२) मुख्य सेनापति (३) मुख्य राज्याधिकारी तथा (४) मुख्य न्यायाधीश हैं। ये सभी वेदादि शास्त्रों में प्रवीण अपने–अपने विषय की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय होने चाहिए।

किस प्रकार के व्यक्ति से किस प्रकार के कार्य करवाए जाएं इसका भी निर्देश दयानन्द ने किया है –

इनमें से महान् कार्यों में कुशल एवं सुपरिचित व्यक्तियों से तथा भीरु स्वभाव वाले व्यक्तियों से आन्तिरिक कार्य सम्पन्न कराए।

Scanned with CamScanner

नित्य घूमने वाले सभापति, अधिकारी आदि के अधीन भिन्न–भिन्न जाति (और स्थानों के) अनेक गुप्तचर रहें। ये गुप्तचर प्रजा के गुण–दोष रीति से जानकर दण्ड और प्रतिष्ठा दिलाएं।

'शठे शाठ्यं समाचरेत्' के सिद्धान्त के अनुसार दुष्ट व्यक्ति से यदि योजनाबद्ध राज्योपयोगी कार्य न कराए गए तो वह स्वयं राज्य के लिए सिर दर्द बन जाएगा। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति पर विश्वास करके उस पर कोई उत्तरदायित्त्वपूर्ण काम सौंपा जा सकता है। आजकल भी जेल आदि में हत्या के कैदियों को नम्बरदार आदि बनाकर उनसे अन्य कैदियों पर नियन्त्रण आदि रखने का कार्य सफलतापूर्वक लिया जाता है।

दूत (राजदूत)

दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य–व्यवस्था में दूत का विशेष स्थान है। इनमें निम्न लिखित गुण अपेक्षित हैं– (१) सुपरिचित कुल में उत्पन्न, (२) चतुर, (३) पवित्र हृदय हो जिसमें, इतनी क्षमता हो कि वह किसी की भीतरी भावना को जान सके तथा भविष्य में होने वाली घटना का अनुमान लगा सके, (४) शास्त्रों में विशारद, (५) राजकार्य में उत्साही, (६) निष्कपटी, (७) बहुत समय की बात को न भूलने वाला, (८) देश और कालानुकूल कार्य करने में समर्थ, (९) सुन्दर रूप युक्त (अच्छा व्यक्तित्व), (१०) निर्भय, (११) महान् वक्ता। वह देश और जनता का हितैषी हो न कि अपने पद के आधार पर स्वार्थ सिद्धि का प्रयत्न करने वाला हो।

विकेन्द्रीकरण

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द राज्यकार्य के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे –

Scanned with CamScanner

(क) तीनों सभाएं अपने–अपने कार्य में स्वतन्त्र हैं अर्थात् विद्यासभा राष्ट्र की सम्पूर्ण शिक्षा–व्यवस्था, राजार्यसभा राष्ट्र की सम्पूर्ण सुरक्षा–व्यवस्था तथा धर्मार्य–सभा देश के धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था को देखती है और साथ ही मिलकर राज्य की उन्नति के लिए अनेक प्रकार के परामर्श देती है तथा नियम आदि बनाती है। उनमें समयानुकूल विधान बनाने के अधिकार है। न्यायपालिका इसी के अन्तर्गत हो।

(ख) राजा सभा द्वारा निर्मित विधानों को क्रियान्वित करता है। इस प्रकार वह कार्यपालिका का अध्यक्ष है। न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट दण्ड आदि को भी राजा ही देता है। साथ ही राजा सेना का भी सर्वोपरि अध्यक्ष होता। देश को आन्तरिक और बाह्य आक्रमणों से वही बचाता है।

(ग) अमात्य न्यायाधीश बनकर दण्डाधिकार रखता है। दण्ड में विनय अर्थात् जिससे अन्याय रूप दण्ड न हो सके ऐसी व्यवस्था करता है। इस प्रकार अमात्य न्यायपालिका का अध्यक्ष है।

(घ) दूत–आधुनिक शब्दावली में दूत परराष्ट्र–मन्त्रालय का सम्पूर्ण कार्य देखता है। राष्ट्र से सन्धि तथा विरोध करने का परामर्श वही देता है।

(ङ) शासन–व्यवस्था तथा उसके लिए नियुक्त अधिकारी (ग्राम राज्य)–दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन व्यवस्था में किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति–समूह के शक्ति–सम्पन्न होने एवं अपनी मनमानी करने का कोई स्थान नहीं है। तीन सभाओं और अनेक समितियों आदि द्वारा शक्ति के विकेन्द्रीकरण करने के साथ देश

Scanned with CamScanner

के विविध भागों में सुचारु रूप से शासन चलाने के लिए ग्राम–राज्य एवं ग्राम पंचायतों की योजना का स्वामीजी ने वर्णन किया है।

महात्मा गाँधी ने दयानन्द से बहुत बाद में ग्राम–राज्य की कल्पना की। दयानन्द उनसे बहुत पहले इसकी कल्पना कर चुके थे। यदि हम दयानन्द द्वारा बताये गये ग्रामराज्य की कल्पना को साकार करने का प्रयत्न करें तो हमारे देश का प्रजातन्त्र अत्यन्त सुदृढ़ हो जाएगा और अनेक समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाएगा। यहाँ राजपुरुषों की नियुक्ति की बात की गयी है। आजकल की परिस्थितियों के अनुसार इनका चुनाव किया जा सकता है।

ग्रामपतियों द्वारा बताए दोषों के निवारण के लिए दयानन्द का सुझाव है कि एक एक, दस दस, सहस्त्र ग्रामों पर दो सभापति हों, जिनमें एक राजसभा में और दूसरा आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहें।

ग्राम–व्यवस्था के अतिरिक्त नगर व्यवस्था के लिए बड़े–बड़े नगरों में सभाओं अर्थात् नगर परिषदों की व्यवस्था सुझाई गई है।

राज्य अर्थात् राजा के कार्य

राज्य के लिए आवश्यक वस्तुएं निम्नलिखित हैं – (१) शस्त्रास्त्र, (२) धन–धान्य, (३) वाहन, (४) ब्राह्मण (पढ़ाने और उपदेश करने वाले), (५) शिल्पी (यंत्र, नाना प्रकार की कला), (६) चारा, घास और जल, (७) सभी ऋतुओं के अनुकूल वृक्ष, पुण्य आदि।

Scanned with CamScanner

स्वामी जी के अनुसार राजा अथवा राज्य के निम्नलिखित कर्त्तव्य (कार्य) हैं – (१) ज्ञान की वृद्धि (समुचित शिक्षा व्यवस्था एवं दुष्ट व्यसनों का नाश), (२) क्षात्र धर्म का विकास (राज्य की आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं से रक्षा), (३) धन धान्य की वृद्धि (निर्धनता और रोग की परिसमाप्ति) (४) सुदृढ़ न्याय व्यवस्था (दुष्टता एवं सामाजिक असमानता की परिसमाप्ति)।

ज्ञान और बल

महर्षि दयानन्द लिखते हैं – 'जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाए जाएं और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है, और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाए आत्मा का नहीं, तो भी राज्य–पालन की उत्तम व्यवस्था के सब आपस में ही फूट टूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट–भ्रष्ट हो जाए। इसीलिए सर्वदा शरीर आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार, व्यभिचार और अति विषयाशक्ति है वैसा कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढ़ाङ्ग और बलयुक्त होना चाहिए, क्योंकि जब वे विषयासक्त होंगे तो राज्य–धर्म ही नष्ट हो जाएगा।

राजा और राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिए ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हो। जो राजा राज्य पालन में सब प्रकार तत्पर रहता है, उसका सुख सदा बढ़ता है। राज–कार्यों के लिए उसे धार्मिक कर्म काण्डों से भी छुट्टी दी गई है।

स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन–व्यवस्था के वर्णन के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:–

Scanned with CamScanner

(१) शासन–व्यवस्था का मुख्य आधार विकेन्द्रीकरण है। इसी विकेन्द्रीयकरण के ही आधार पर सम्पूर्ण शासन–भार किसी एक व्यक्ति अथवा एक ही संस्था के आधीन न कर तीन सभाओं–विद्यार्य सभा (शिक्षा के लिए) राजार्य सभा (राज्य कार्य, रक्षा एवं धन आदि के लिए तथा धर्मार्य सभा (धर्म एवं सामाजिक समानता के लिए) के अधीन किया है। ये तीनों मिलकर जहाँ सम्पूर्ण राजकार्य के लिए उत्तरदायी होंगी वहाँ ये अपने–अपने विषय में सर्वथा स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करेंगी। राजा (जो कि केवल सभापति है) केवल उन सभाओं द्वारा किये गये निर्णयों को क्रियान्वित करेगा। इस प्रकार कार्य–शक्ति प्रधान मन्त्री के पास न होकर सभापति के पास होगी। आधुनिक संसदीय प्रणाली में एक सभा (लोक अथवा राज्य सभा) शिक्षा, वित्त और रक्षा आदि सभी कामों को सम्पन्न कर लेती है। एक ही सभा अथवा उसके सभासद् सभी विषयों के विशेषज्ञ नहीं हो सकते। अतः उन सभासदों को तीन भागों में विभक्त कर, उनकी जिस कार्य में रुचि हो–उन तीनों ही सभाओं को अपने विषय का पूर्ण अधिकार देकर कार्य का विभाजन करना चाहिए। इन सभाओं के अन्तर्गत भी कुछ समितियां बनानी अपेक्षित हैं।

(२) इन तीनों ही सभाओं के सभ्यों (सभासदों अथवा सदस्यों) का प्रजा चुनाव करती है। चुनाव में यह स्पष्ट होना चाहिए कि कौन सा उम्मीदवार किस विषय का विशेषज्ञ है, प्रजा प्रत्येक सभा में उस विषय के ही विशेषज्ञ को ही भेजेगी। ये तीनों सभाएं पृथक् पृथक् रूप से अपने अध्यक्ष का चुनाव भी करेंगी।

(३) महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शासन–व्यवस्था के वर्णन से यह संकेत मिलता है कि देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग

Scanned with CamScanner

राज्य अर्थात् प्रांत हों। उन्होंने एक राज्य की एक सभा में १० सदस्यों का वर्णन किया है, जिसमें सूचित होता है कि वे वर्तमान प्रदेशों से भी छोटे राज्यों की कल्पना करते थे। उन सब राज्यों अथवा राजाओं के ऊपर एक चक्रवर्ती राज्य अथवा राजाओं के ऊपर एक चक्रवर्ती राजा अर्थात् केन्द्रीय सरकार सदा इस बात को देखे कि कहीं कोई राज्य प्रजा–विरोधी कार्य तो नहीं कर रहा। पर उसे राज्य की आन्तरिक नीतियों, प्रगति के तरीकों आदि में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।

जिस प्रकार आज हमारे देश में एक केन्द्र है और अनेक प्रदेश हैं, दयानन्द की शब्दावली में केन्द्र चक्रवर्ती राज्य हैं और प्रधान मन्त्री उनका राजा है। प्रदेश अनेक राज्य हैं और उनके मुख्यमंत्री उसके राजा हैं। केन्द्र सरकार की सहायता से उन्नति कर सके संकट की स्थिति में तो केन्द्र–सरकार राज्यों की सहायता करेगी ही।

(४) राज्यों की सम्पूर्ण शासन–व्यवस्था भी दयानन्द केवल राज्य के एकाधिकार में रखने के पक्ष में नहीं थे। इसके लिए उन्होंने प्रायः राज्य व ग्राम–पंचायतों का सुझाव दिया है। इस प्रकार उन्होंने सत्ता को अधिक से अधिक फैलाया है।

(५) यहां इस बात का भी उल्लेख आवश्यक है कि महर्षि दयानन्द को विश्व सरकार या विश्व शासन–व्यवस्था की स्पष्ट कल्पना थी। वे लिखते हैं – '.....और वे सब राजसभा अर्थात् चक्रवर्ती महाराज सभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें।



Scanned with CamScanner

शासक और शासित

शासक वर्ग केवल भृत्य है

. दयानन्द का कथन है कि राजा तथा राजपुरुष यही समझें कि "वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम"। (यजुर्वेद)–हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा, हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि राजा परमेश्वर का प्रतिनिधि अथवा दूत आदि कुछ नहीं है, केवल परमात्मा का नौकर है। जो उसकी प्रजा के लिए कार्य करता है प्रजातन्त्र की आधुनिक व्याख्या में भी शासक को प्रजा का नौकर ही माना गया है। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य उसी एक ईश्वर का पुत्र है। अतः राजा उसकी सेवा द्वारा वस्तुतः अपने स्वामी परमेश्वर को ही प्रसन्न करके उसका ही कार्य सम्पन्न करता है।

राजा (समग्रराज्य व्यवस्था) और प्रजा (शासक और शासित)

महर्षि दयानन्द ने प्रजा और राजा में पिता–पुत्र और गुरु–शिष्य सम्बन्ध स्थापित करने का निर्देश दिया है–

(क) सभापति रूप राजा (जो सम्पूर्ण राज्य–व्यवस्था का प्रतिनिधि है, प्रजा से पिता के समान वर्ते–वर्तेत पितृवन्नृषु)।

राजा प्रजा को सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। महर्षि की स्पष्ट घोषणा है कि किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो प्रजा न हो तो राजा किसका ? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रजा पालन ही राजा का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि राजा प्रमाद–रहित होकर सब कर्त्तव्यों को पूरा करके प्रजा की रक्षा करे।

शासक का विशेष दायित्व

राजा अथवा शासक को पिता और गुरु तुल्य मान लेने पर राज्य का कुछ विशेष दायित्व प्रकट होता है। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा राजा होता है, वैसी ही उसकी प्रजा होती है, इसीलिए राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्तकर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

महर्षि दयानन्द ने राजा के गुणों का विकास करने के लिए नियमित जीवन सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार, अग्निहोत्र, व्यायाम, और पारिवारिक जीवन की पवित्रता आदि बातों पर बल दिया है। इनमें अग्निहोत्र एवं धार्मिक कृत्य (कर्मकाण्ड) राजा अथवा शासक तभी करे जब उनके पास समय हो। वस्तुतः लोक–संग्रह में प्रवृत्त रहना ही उसका अग्निहोत्र है।

विचार-स्वतन्त्रता; जनमत संग्रह व राजाज्ञा

महर्षि दयानन्द विचार–स्वतन्त्रता को विशेष महत्त्व देते थे। यदि व्यक्ति के विचार देश की निष्ठा के विरुद्ध नहीं है, तो उन्हें व्यक्त करने का उसे निर्बाध अधिकार है। महर्षि दयानन्द भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के आधिपत्य को देखकर अत्यन्त चिन्तित थे, उसकी समालोचना भी किया करते थे।



Scanned with CamScanner

रक्षा-व्यवस्था

हम पहले अध्याय में देख चुके हैं कि राजा अथवा राज्य के कार्यों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य देश की रक्षा व्यवस्था है। राजा को आन्तरकि और बाह्य दोनों ही शत्रुओं से देश की रक्षा व्यवस्था करनी होती है। महर्षि दयानन्द ने देश की सुरक्षा–व्यवस्था पर विशेष बल दिया है। इस अध्याय में हम दोनों–आन्तरिक और बाह्य–रक्षा व्यवस्थाओं का अध्ययन करेंगे।

(क) आन्तरिक सुरक्षा-व्यवस्था

महर्षि दयानन्द ने देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए बहुत बल दिया है। उनके निम्नलिखित कथन उनकी इस भावना को प्रकट कर देते हैं।

जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता और टूटने नहीं देता है। वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे।

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगमन, न दुष्ट वचन को बोलने वाला, न साहसिक डाकू और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला है, वह राजा अतीव श्रेष्ठ है। स्पष्टतः इन दोषों को दूर करने के लिए राजा को इन्हें दण्डित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि राजा को आन्तरिक खतरों से सदा सावधान रहना चाहिये। पर महर्षि दयानन्द के इन कथनों में देश को चोर डाकुओं आदि से बचाने का संकल्प है।

महर्षि दयानन्द के उदाहरणों के आधार पर यह सहज ही

Scanned with CamScanner

कहा जा सकता है कि देश में विद्यमान दुष्ट–प्रकृति के मनुष्यों से निपटने के लिए पुलिस को आधुनिकतम उपकरणों से सज्जित होना चाहिए। यदि राज्य से दुष्टों की संख्या बढ़ गई, तो राज्य के ही नष्ट–भ्रष्ट हो जाने का भय है।

(ख) बाह्य सुरक्षा-व्यवस्था

बाह्य सुरक्षा–व्यवस्था को दो भागों में विभाजन किया जा सकता है (१) अन्य देशों से हमारा सम्बन्ध, (२) शत्रु देशों से अपनी सुरक्षा। अन्य देशों से सम्बन्ध का कार्य आजकल परराष्ट्र मन्त्रालय के तथा शत्रु देशों से अपनी सुरक्षा का कार्य रक्षा–मन्त्रालय के अधीन है। यहां हम ऋषि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत इन दोनों मन्त्रालयों के कार्यों का अध्ययन करेंगे।

१. अन्य देशों से सम्बन्ध

राष्ट्रों में परस्पर मित्रता, उदासीनता एवं शत्रुता ये तीन भाव होते हैं। नीतिज्ञ राजा सदा इस प्रकार का उपाय करे कि उसके मित्र, शत्रु और उदासीन बहुत अधिक न हों। सामान्यतः सभी राष्ट्रों से समभाव रहे। गुट निरपेक्षता में यही भावना है। राष्ट्रों में सदा परस्पर समभाव बना ही रहे, यह अत्यन्त कठिन काम है, अतः निम्नलिखित गुणों से युक्त राष्ट्र (अथवा उस राष्ट्र के नायक) को मित्र बना कर लाभान्वित हो–

जो गुण मित्र राष्ट्र के हैं, उनसे विपरीत लक्षण जिस राष्ट्र में हों, उससे समभाव के साथ रहना कठिन होता है, उदासीन भी नहीं रहा जाता, वह दुष्ट बुद्धि और दुष्ट वृत्ति का होने के कारण अकारण ही शत्रु हो जाता है। अपनी सीमाओं को बढ़ाने की दुर्लालसा तथा कभी अपने मिथ्या अहं की पूर्ति के लिए किसी भी राष्ट्र नायक को सावधान रहने की बहुत आवश्यकता है। शत्रु

Scanned with CamScanner

राष्ट्र से निम्नलिखित नीति के अनुसार व्यवहार करना चाहिए–
(क) सन्धि शत्रु होने का अर्थ यह नहीं है कि सदा उससे विरोध ही रहे। सामान्यतः उसके साथ भी व्यवहार में समभाव रहना चाहिए। शत्रु से मेल अथवा विपरीतता–दोनों ही स्थितियों में यह ध्यान रखे कि वर्तमान और भविष्य में करने के काम बराबर करता जाए। अपने व्यवहार में कोई अन्तर न लाए।

शत्रु-देशों से अपनी सुरक्षा (युद्ध की अनिवार्यता)

उपर्युक्त विवेचन से यह सूचित होता है कि अनेक बार युद्ध अपरिहार्य होता है। जब शत्रु–राष्ट्र के साथ मित्रता व सद्–व्यवहार तथा समझौते आदि के सब प्रयत्न, सब द्वार बन्द हो जाते हैं। जब दुष्ट राष्ट्र अपने दुष्ट व्यवहार को छोड़ नहीं पाता। जब कोई राष्ट्र साम्राज्यवादी वृत्ति के कारण अपने राज्य–विस्तार की कामना से पड़ौसी राष्ट्र के साथ छेड़खानी करता है। किसी सामान्य विषय पर उत्पन्न विरोध को शान्त करने के लिए अहंकार वश युद्ध छेड़ बैठता है। कभी वह किसी व्यापारिक विवाद अथवा किसी अन्तःराष्ट्रीय विषय पर दबाव डालने के लिए आक्रमण कर देता है। ऐसी स्थिति में युद्ध की चुनौती को स्वीकार करना अनिवार्य है।

यद्यपि युद्ध एक शत्रु का उन्माद मात्र है, पर उस उन्माद को नष्ट करने के लिए युद्ध का करना देश अथवा राज्य के लिए हितकर है। महर्षि दयानन्द ने परमात्मा के दयालु और न्यायकारी दोनों विरोधी प्रतीत होने वाले गुणों का विरोध दूर करने के लिए जो तर्क दिया है, वही युद्ध के पक्ष में भी दिया जा सकता है–'न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है। क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से दण्ड देने का प्रयोजन है। मनुष्य अपराध करने से बद्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हो वही दया

Scanned with CamScanner

कहाती है अर्थात् पराये दुःखों का छुड़ाना। दया और न्याय का यह अर्थ कि न्याय में अपराधी को दण्ड और दया में अपराधी को बिना दण्ड दिये छोड़ देना ठीक नहीं। जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिए, उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए, क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्त्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख प्राप्त होता है, वह दया किस प्रकार हो सकती है ? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना। डाकू पर और उस डाकू को मार देने से अन्य सहस्त्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है। जब कोई राष्ट्र युद्ध के लिए उन्माद होता है तो युद्ध में उसे हरा कर ही उसके उस उन्माद को दूर किया जा सकता है। इससे मानवजाति का कल्याण ही होता है।

जो देश दुष्ट वृत्ति से युद्ध करते हैं उनके लिए महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के 'मामर्त्यस्य मायिनः' (ऋग्वेद १।३६।२) इस मंत्रांश को उदधृत करके कहा है कि जो अन्याय रूप काम करता है, वह कभी विजयी न हो। इस प्रकार अन्याय का नाश और धर्म की स्थापना ही युद्ध का उद्देश्य है।

युद्ध के लिए शक्ति का उचित केन्द्रीयकरण अनिवार्य है। अलग–अलग सेनाओं के अलग–अलग सेनापति भले ही हों, पर उन सबका नेतृत्व अकेला राजा करे। ताकि ठीक समय पर वह सबका उपयोग ठीक स्थान पर कर ले। महर्षि दयानन्द ने ठीक समय और ठीक स्थान पर ही युद्ध करने का परामर्श दिया है :–

सुरक्षा की दृष्टि से महर्षि दयानन्द ने राजा को निम्नलिखित आदेश दिये हैं :–

Scanned with CamScanner

अपनी सुरक्षा के लिए वह बहुत अनिवार्य है कि अपने गुप्तचरों की सहायता से यह सदा जाने कि कहीं कोई ऐसा राष्ट्र तो नहीं है, जो ऊपर से मित्र और अन्दर से शत्रु हो। ऐसे मित्रगण शत्रु से बहुत सावधान रहें।

स्वयं किसी से छल न करें। शत्रु द्वारा उसके प्रति किये जा रहे छल से सावधान रहें, उससे निपटें।

युद्ध–प्रयाण के समय भी चारों ओर से समाचारों की जानकारी के लिए गुप्तचर रखें।

युद्ध के समय सेनानायक (राजा) सारी सेना पर दृष्टि रखे, कहीं कोई कपट न रखता हो। सुरक्षा के लिए इस प्रकार की दृष्टि का रखना आवश्यक है।

युद्ध कभी किन्हीं निश्चित बंधे–बंधाए जड़ सिद्धांतों के आधार पर नहीं लड़े जाते। समय और स्थान पर उचित निर्णय लेकर विजय की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। समय पर आगे बढ़ना और समय पर पीछे हटना–यह सब सिद्धांतों के लचीलेपन पर निर्भर करता है।

महर्षि दयानन्द कहते हैं युद्ध के लिए मनोबल का होना बहुत आवश्यक है। सेना, राज्याधिकारी और राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का जब तक मनोबल ऊंचा नहीं होता तब तक युद्ध की कल्पना भी भयावह प्रतीत होती है।

राष्ट्र व सेना के मनोबल को स्थिर रखने के लिए निम्न लिखित व्यवस्थाओं पर बल दिया है :–

(क) आधुनिकतम प्रचुर अस्त्र-शस्त्र

महर्षि दयानन्द राष्ट्र के स्वाभिमान व मनोबल को ऊंचा रखने के लिए राष्ट्र में आधुनिकतम अस्त्र–शस्त्रों का प्रचुर मात्रा में होना

Scanned with CamScanner

आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं –

युद्ध में स्थल, जल और आकाश–तीनों मार्गों में क्रमशः रथ, अश्व, हाथी, नौका और विमानादि की सहायता ली जाए।

(ख) पर्याप्त सेना (सैनिक शिक्षा)

मनोबल को ऊंचा रखने के लिए पर्याप्त सेना का होना भी आवश्यक है। महर्षि दयानन्द कहते हैं–"युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी" (ऋग्वेद १/३६/२) अर्थात् तुम्हारी सेना प्रशंसनीय होवे।

संख्या के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का यह वाक्य उल्लेखनीय है कि राजा स्वयं राजपुरुषों तथा प्रजा के अनेक लोगों को सैनिक शिक्षा दे। इससे यही सूचित होता है कि सैनिक शिक्षा बड़े पैमाने पर होनी चाहिए। विद्यालयों और महाविद्यालयों से भी सैनिक शिक्षा का संकेत इससे प्राप्त होता है।

(ग) कुशल सेनानायक राजा

सेना और राष्ट्र के मनोबल के लिए सेनानायक का कुशल होना अत्यन्त आवश्यक है।

(१) वह पुत्रवत् सेना को रखे। सेना के सुख–दुःख में अपना सुख–दुःख समझे।

(२) समय–समय पर उनको प्रेरणा देता रहे, उनका अपने प्रभावी भाषणों से उत्साह–वर्द्धन करता रहे। युद्ध के समय में उत्साहपूर्ण वचनों का जादू–सा प्रभाव होता है। युद्ध के बाद भी जो अच्छा लड़े हैं, उनका तथा अन्य सभी का उत्साह–वर्द्धन करें।

(३) युद्धकाल में खानपान, औषध आदि की सुव्यवस्था करे।

(४) युद्ध की जो पद्धति है, (अर्थव्यूह रचना आदि) इसका कुशल निर्देश करे।

Scanned with CamScanner

इन सब उपायों से सेनानायक सेना का मनोबल ऊंचा करने में समर्थ होता है।

(घ) युद्ध के उपरान्त सैनिकों का सम्मान और उनके परिवारों की व्यवस्था

सेना के मनोबल को ऊंचा रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि युद्ध के उपरान्त वीर सैनिकों का समुचित सम्मान हो, उनका उपाधियों, पदकों एवं पदोन्नति आदि से उत्कर्ष हो।

विजयी सैनिकों के सम्मान के साथ ही जो कोई युद्ध में मर गया हो उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे और उसकी स्त्री तथा असमर्थ सन्तानों का यथावत् पालन करें। जब उसके लड़के समर्थ हो जाएं तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे, जो कोई अपने राज्य की वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनंद–वृत्ति की इच्छा रखता हो वह इस मर्यादा का उल्लंघन कभी न करे।

युद्ध के सिद्धान्तों में कुशल प्रशासन का अत्यन्त महत्त्व है। कुशल प्रशासन के ही अन्तर्गत सीमाओं की सुरक्षा भी आती हैं।

कुशल प्रशासन से आधा युद्ध जीता माना जा सकता है जिनका वर्णन कर चुके हैं। आक्रमण के समय उनका प्रयोग करना होगा।

अनेक बार शत्रु नैतिकता और युद्ध नियमों को सर्वथा तिलाञ्जलि देकर नागरिकों आदि पर धावा प्रारम्भ कर देता है। उस समय आपत्काल में "शठे शाठ्यं समाचरेत्" का ही सिद्धान्त अपनाना चाहिए।

किन्तु महर्षि दयानन्द ने युद्ध की मर्यादा का पूरा ध्यान रखते हुए कहा कि स्त्री, बालक, वृद्ध, आतुर और शरणागत आदि पर शस्त्र कभी न चलावें।

Scanned with CamScanner

युद्ध के बाद शत्रु से व्यवहार

महर्षि दयानन्द की स्पष्ट मान्यता है कि युद्ध शत्रु के दुष्ट भाव के विनाश के लिए है, किसी को सताने या राज्य–विस्तार आदि के लिए नहीं। युद्ध करके शत्रु के राज्य को अथवा उसके राज्य की वस्तुओं को हड़प लेना अनुचित है। क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और बिना प्रीति का कारण है।

युद्ध में जो पराजित हो, युद्ध बंदियों और उनके लड़कों, बालाओं को अपनी सन्तानवत् पाले। और स्त्रियों को भी पाले उनको अपनी बहन और कन्या के समान समझे। कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखें।

जब राज्य अच्छी प्रकार जम जाये और जिनमें पुनः पुनः युद्ध करने की शंका न हो, उनको सत्कारपूर्वक छोड़ कर अपने–अपने घर वा देश को भेज देवे और जिनसे भविष्य में विघ्न होना सम्भव हो उनको सदा कारागार में रखें।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि युद्ध की तैयारी राष्ट्र को अनुशासित करने एवं उसका मनोबल बढ़ाने के लिए तथा दुष्ट देश की दृष्टता को नष्ट करने के लिए आवश्यक है। देश की रक्षा–व्यवस्था ही उसका प्राण है।



Scanned with CamScanner

अर्थ-व्यवस्था

परिभाषा

महर्षि दयानन्द के अनुसार अर्थ वह है जो धर्म ही से प्राप्त किया जाए। जो अधर्म से सिद्ध होता है, उनको अनर्थ कहते हैं।

अर्थ-संग्रह (कर-प्रणाली द्वारा)

महर्षि दयानन्द कहते हैं जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मछली को पकड़ने के लिए ताकता है वैसे राजा अर्थ–संग्रह का विचार करे। अर्थात् उसे अर्थ–संग्रह के लिए अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। राजा के अर्थ–संग्रह–रूप महान् कार्य में थोड़ी–सी ढील होते ही देश की अर्थ–व्यवस्था शिथिल हो जाती है।

राज्य के लिए अर्थ संग्रह का प्रधान साधन आयकर है। महर्षि दयानन्द ने सुव्यवस्थित कर–व्यवस्था का विधान किया है और निम्नलिखित नीति–वाक्य निर्धारित किये हैं –

(क) जिनसे राज पुरुष और प्रजा–जन सुखी हों, राजा और राजसभा राज्य में वैसा 'कर' स्थापन करे।

(ख) जैसे जोंक, बछड़ा और ममाखी थोड़े–थोड़े भोग्य पदार्थ ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा–थोड़ा वार्षिक कर लेवे।

(ग) अति लोभ से (इतना कर कभी न ले कि) दूसरों के सुख के मूल को नष्ट न करे।

आयकर किस प्रकार लगाया जाय ? इसका भी उल्लेख महर्षि दयानन्द ने किया है।

Scanned with CamScanner

महर्षि दयानन्द ने इस समस्या पर विजय प्राप्त करने के दो उपाय निर्दिष्ट किए हैं–१. ईमानदार आयकर अधिकारी और २. कठोर दण्ड। आयकर की चोरी रोकने के लिए आवश्यक है कि आयकर अधिकारी अत्यन्त ईमानदार हों। महर्षि दयानन्द का कथन है कि वार्षिक कर आप्त पुरुषों द्वारा प्राप्त करे– *सांवत्सरिकमाप्तै च।* अतः नियुक्ति में व्यक्ति के चरित्र आदि की जानकारी आवश्यक है।

महर्षि दयानन्द ने दूसरा उपाय दण्ड द्वारा अप्राप्त कर को प्राप्त करने का बताया है।

अर्थ व्यवस्था के प्रयोग में महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट सेवा निवृत्त (चाहे वह आयु के कारण हो या किसी अपराध के कारण) व्यक्ति के लिए की गयी व्यवस्था भी उल्लेखनीय है।

भारत की अर्थ व्यवस्था में कृषि एवं गो–पालन का विशेष महत्त्व है। अपने परिश्रम से सम्पूर्ण राष्ट्र का भरण–पोषण करने वाला किसान है, अतः वे उसे 'राजाओं के राजा' कहते थे। राजा के बिना देश नहीं चल सकता है, पर राजा के लिए किसान के बिना राष्ट्र का चलना असम्भव है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द राज्य की समुन्नति के लिए समुचित अर्थ व्यवस्था चाहते थे, और इसके लिए कुछ सुनिश्चित सिद्धांत उन्होंने निर्धारित किये।



Scanned with CamScanner

न्याय-व्यवस्था

न्याय–व्यवस्था के दो अंग हैं–(१) न्यायाधीश द्वारा अपराधी के अपराध का विश्लेषण कर उसके लिए उपयुक्त दण्ड विधान, तथा (२) निर्धारित दण्ड के अनुसार अपराधी को दण्डित करना। महर्षि दयानन्द की व्यवस्था के अनुसार प्रथम अंग धर्मार्य सभा के अधीन है तथा द्वितीय राज्य सभा के। न्याय के ये दोनों ही अंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

महर्षि दयानन्द की मान्यता के अनुसार न्यायाधीश सभाओं द्वारा निर्मित नियमों के आधार पर न्याय करता है। किन्तु सभाओं द्वारा निर्मित न्याय के नियम सामाजिक एवं सार्वभौम नियमों का अतिक्रमण नहीं करते। सबसे बड़ी बात यह है कि न्यायाधीश स्वयं धर्मार्य सभा का प्रधान होने से उन नियमों का निर्माता भी होता है न्यायाधीश की नियुक्ति सभाओं के सभासद् एवं राज्य ही करते हैं।

न्यायाधीश की परिभाषा

महर्षि दयानन्द ने न्यायाधीश की परिभाषा करते हुए कहा कि जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य को ग्रहण करें, अन्यायकारियों को हटावें और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे, सो न्यायकारी है।

अभिप्राय यह कि न्याय–व्यवस्था कोई जड़ व्यवस्था नहीं है, जो कि केवल बने–बनाए कानून के आधार पर न्याय कर दे। यदि

Scanned with CamScanner

किसी नई परिस्थिति में हुए अपराध के कारण अपराधी की अपराध–वृत्ति प्रकट नहीं होती, अथवा उसमें सत्य और न्याय इन दोनों तत्त्वों का हनन होता है, तो वह बना हुआ कानून (वह कानून मनुष्य–कृत ही है, ईश्वर–कृत नहीं) बदला भी जा सकता है। न्यायाधीश कानून के निर्माताओं को उसे बदलने के लिए कह सकता है।

महर्षि दयानन्द ने न्यायाधीश को सम्बोधित करते हुए कहा है कि इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है, जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर स्पष्ट करना अनिवार्य है कि महर्षि के अनुसार धर्म, सत्य और न्याय का समन्वय है।

न्यायाधीश धर्म का एक रक्षक है। अतः धार्मिक व्यक्ति ही न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठ सकता है।

महर्षि दयानन्द का उसे स्पष्ट आदेश है कि वह किसी का पक्षपात कभी न करे। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठकर पिता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो, जो स्व–धर्म में स्थित नहीं, वह दण्डित नहीं होता, अर्थात् जब न्यायासन पर बैठकर न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करें।

साक्षी

महर्षि दयानन्द ने साक्षी के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए हैं वे आज भी उपयोगी हैं। उनके अनुसार साक्षी दो प्रकार के होते हैं :–

Scanned with CamScanner

(१) जिन्होंने अपराध को देखा हो,

(२) जिन्होंने अपराध के विषय में विश्वसनीय सुना हो।

महर्षि दयानन्द की मान्यता है कि धार्मिक, विद्वान्, निष्कपट, धर्मवेत्ता, लोभ रहित एवं सत्यवादी व्यक्ति ही साक्षी हो सकता है।

शपथ

शपथ, वादी, प्रतिवादी व साक्षी की अन्तरात्मा को जगाने के लिए कराई जाती है। जो साक्षी सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है और जो असत्याचरण करता है वह निन्दित होता है।

महर्षि दयानन्द का यह भी कहना है कि सब साक्षियों को पृथक्–पृथक् रखे। दोनों, तीनों, साक्षियों से पृथक्–पृथक् पूछने से उनकी सच्चाई की परीक्षा आसानी से होनी सम्भव है। जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे। जो असत्य साक्षी देवे उसे दण्डित किया जावे।

दण्ड–व्यवस्था

महर्षि दयानन्द राज्य में एक सशक्त दण्ड–व्यवस्था रखने के समर्थक थे। दण्ड ही पुरुष अर्थात् राजा है। वही न्याय का प्रचार–कर्त्ता एवं सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का संपोषक है। दण्ड–व्यवस्था के अभाव में सब लोगों में प्रकोप का जन्म होता है। दण्ड की समानता एक कृष्ण वर्ण वाले एवं रक्त नेत्र वाले भयंकर मनुष्य से की गई है, जिससे प्रजा मोहशून्य होकर अपने कर्त्तव्य–पथ

Scanned with CamScanner

पर दृढ़ रहे। प्रजा का शासक वा रक्षक है, प्रसुप्त को जागरित करता है, विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म करते हैं :–

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।।मनु.

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने दण्ड की अत्यन्त महिमा का गान किया है।

किन्तु दण्ड का प्रयोग करने के लिए अत्यन्त विवेक की आवश्यकता है। सुविचारित दण्ड ही प्रजा के लिए आनंददायक सिद्ध होता है, अविचारित दण्ड–व्यवस्था अन्ततः राज्य का ही नाश करती है। सुविचारित दण्ड–व्यवस्था के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है :–

(१) दण्ड देने वाले के हृदय की पवित्रता, (२) दण्ड का उदात्त उद्देश्य, (३) ठीक अपराधी को दण्ड, तथा (४) अन्य उपायों के निष्फल होने पर दण्ड–अन्तिम शस्त्र है। प्रतिपादित दण्ड–व्यवस्था में न्यायाधीश दण्ड का निर्देश करता है तथा राजा उस दण्ड को देता है। किन्तु इन दोनों को दण्ड देने का अधिकार तभी है जब उनका हृदय अत्यन्त निश्छल एवं निष्पक्ष हो। न्यायाधीश की निष्पक्षता एवं उनके हृदय की पवित्रता की चर्चा हम कर चुके हैं। न्यायाधीश के साथ राजा को भी (१) पक्षपात–रहित एवं पवित्रात्मा (२) सत्यावादी एवं सत्य–विचारक (३) बुद्धिमान् (४) धर्म, अर्थ काम की नीति का पण्डित (५) नीति शास्त्र का ज्ञाता तथा (६) सत्पुरुषों का संगी होना चाहिए। यदि दण्ड देने वाले में ये गुण

Scanned with CamScanner

न हुए तो दण्ड का कोई लाभ नहीं होगा। इन गुणों से रहित होने पर व्यक्ति का दण्ड देने का उद्देश्य पवित्र न होकर अपनी स्वार्थ–साधना होगा, और वह न्यायाधीश द्वारा निर्धारित दण्ड के अनुसार दण्ड न देकर उससे अपने स्वार्थ के आधार पर दण्ड देगा। यदि दण्ड देने वाला राजा स्वयं अपराधी है या अपराध–वृत्ति वाला है तो उसका कोई प्रभाव होना सम्भव नहीं। साथ ही वह निष्पक्ष इतना होना चाहिए कि चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हो, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का ज्ञाता क्यों न हो, यदि उनका अपराध गुरुतर है और न्यायधीश ने इनका दण्ड सुना दिया है तो इस दण्ड के अनुसार ही आचरण करे।

(३) ठीक अपराधी को दण्ड (अनपराधी को नहीं)

महर्षि दयानन्द की इस विषय में स्पष्ट धारणाएँ हैं :–

यदि राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीय को दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा और बड़े दुःख को प्राप्त होता है। इसीलिए जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे।

जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहाँ अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं, उनमें से एक अधर्म के कर्त्ता दूसरा साक्षी, तीसरा सभासद् और चौथा इस अधर्मी सभा का सभापति अर्थात् राजा।

Scanned with CamScanner

निन्दा के योग्य व्यक्ति की निन्दा, स्तुति के योग्य व्यक्ति की स्तुति, दण्ड योग्य व्यक्ति को दण्ड और मान के योग्य का मान होता है वहाँ राजा और सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं। केवल पाप का कर्त्ता पापी रहता है। इस प्रकार सुविचारित दण्ड–व्यवस्था में ठीक अपराधी को दण्ड देना बहुत आवश्यक है।

(४) अन्य उपायों की निष्फलता होने पर अन्तिम अस्त्र

सुविचारित दण्ड–व्यवस्था में दण्ड का प्रयोग एकदम नहीं होता। जब अन्य प्रयत्न असफल हो जाते हैं तब अन्तिम अस्त्र के रूप में दण्ड का प्रयोग किया जाता है।

अपराधी की निन्दा उसको धिक्कार अथवा उस पर अर्थ दण्ड लगाकर यदि उसकी अपराध–वृत्ति नष्ट की जा सके तो और कोई दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यदि दण्ड के उक्त तीनों प्रकार असफल हो जायें तो कोड़े से बेंत मारने से लेकर सिर काट लेने तक (जैसा अपराध हो) दण्ड दिया जा सकता है।

झूठा साक्षी

महर्षि दयानन्द के अनुसार जो लोग झूठी साक्षी देवे उन्हें भी दण्ड देना चाहिए। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट इस सिर छेदन आदि कठोर दण्ड–विधान को देखकर एक प्रश्न कर्त्ता ने कहा–यह कड़ा दण्ड उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी का कोई अंग बना नहीं सकता वह उसके अंग को काटने का अधिकारी किस प्रकार है ? अतः ऐसा कठोर दण्ड न देना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया–'जो इसको कड़ा दण्ड मानते हैं वे राजनीति को नहीं

Scanned with CamScanner

समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे, और बुरे काम को छोड़कर धर्म–मार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो एक राई भर भी यह दण्ड सबके भाग में न आवेगा। यदि सुगम दण्ड दिया जाए तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगेंगे। जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो, वह करोड़ों गुणा अधिक होता है। क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा–थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा। इस बात को उन्होंने गणित की सहायता से समझाया है। पहले एक व्यक्ति अपराध करता था उसे एक मन दण्ड देकर शेष सभी को अपराध से बचा लिया जाता था, अब दण्ड–व्यवस्था सुगम कर देने पर सभी द्वारा अपराधी हो जाने के कारण, सबको पाव–पाव दण्ड दिया जाय तो राज्य में दण्ड की मात्रा अधिक होगी।

राजा, राजपुरुष तथा न्यायधीश आदि के लिए दण्ड

महर्षि दयानन्द ने यह प्रश्न उठाकर कि राजा व रानी, अथवा न्यायाधीश व उनकी स्त्री अपराध करें तो उसको कौन दण्ड देवे ? उत्तर दिया सभा अर्थात् उनको तो प्रजा–पुरुषों से भी अधिक दण्ड देना चाहिए।

राजा और न्यायाधीश के दण्ड के साथ अन्य राजपुरुषों की अपराध–वृत्ति पर भी ध्यान रखना आवश्यक है। दयानन्द का कहना है कि जो राजपुरुष अन्याय से वादी, प्रतिवादी से गुप्त धन ले के पक्षपात वा अन्याय करे उसका सर्वस्व हरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे जहाँ से पुनः लौट कर न आ सके, क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जाए तो उसको देख

Scanned with CamScanner

के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाए तो बचे रहें।

दण्डनीति में भेद

यह शीर्षक अपने में चौंका देने वाला है। सम्पूर्ण न्याय–व्यवस्था पक्षपात रहित प्रतिपादित करने के बाद दण्डनीति में भेद का अर्थ समझना कठिन है। आजकल की दण्डनीति के अनुसार हर छोटे–बड़े के लिए समान रूप दण्ड–व्यवस्था निर्धारित की गयी है। पर दयानन्द की दृष्टि में यह ऊपर से समान प्रतीत होने वाली दण्ड–व्यवस्था में वस्तुतः बहुत ही असमान है।

महर्षि दयानन्द द्वारा निर्धारित दण्ड–व्यवस्था में धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित एवं राजा प्रजा के अपराध में भेद माना गया है। उनके अनुसार निर्धन की अपेक्षा धनी, अशिक्षित की अपेक्षा शिक्षित और प्रजा की अपेक्षा राजपुरुष अथवा राजा कोई एक अपराध करे तो धनी, शिक्षित और राजपुरुष का अपराध अपेक्षाकृत बड़ा माना जाना चाहिए। जिस व्यक्ति में जितना सामर्थ्य, विवेक और अधिकार है, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही अधिक है। जिस प्रकार मां अपने पांच और बीस वर्ष के पुत्र के अपराध में अन्तर करती है और वह अन्तर न्यायोचित होता है, उसी प्रकार प्रजा और राजपुरुष के अपराध में अपेक्षित है। निर्धन एवं अशिक्षित व्यक्ति को थोड़े से ही दण्ड से ही वश में किया जा सकता है, किन्तु धनी एवं शिक्षित को थोड़े दण्ड से वश में करना कठिन है। दयानन्द का कथन है कि अपराध में प्रजा से राजपुरुषों पर अधिक दण्ड होना चाहिए। क्योंकि बकरी के प्रमाद रोकने से सिंह का प्रमाद रोकने

Scanned with CamScanner

में अधिक प्रयत्न होना उचित है। इस सम्बन्ध में उनकी निम्नलिखित व्यवस्था है –

(क) मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ गुणा, उससे नीचे को सात गुणा और उससे भी न्यून को छः गुणा, इसी प्रकार उत्तर–उत्तर अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है, उसको भी पर्याप्त दण्ड होना चाहिए।

(ख) जो कोई विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी की राशि से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बीस गुणा, ब्राह्मण को चौसठ गुणा दण्ड होना चाहिए। अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध करने पर उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।

महर्षि दयानन्द का अभिप्राय सर्वथा स्पष्ट है। दण्ड का उद्देश्य है–अपराध–वृत्ति को नष्ट करना। जिस व्यक्ति की यह वृत्ति जितने दण्ड से नष्ट हो उसको उतना ही दण्ड मिलना चाहिए।

दयानन्द द्वारा प्रतिपादित न्याय–व्यवस्था का प्रतिपादन करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप में उनका निम्नलिखित कथन उद्धृत किया जा सकता है–"जिस समाज में न्यायाधीश के सामने अन्याय हो तो प्रजा का दोष नहीं है, किन्तु वह दोष सभाध्यक्ष, सभासद और न्यायाधीश का ही गिना जाता है।"

Scanned with CamScanner

उपसंहार

महार्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में वर्णित राजनीति के सिद्धान्तों का अवलोकन करने के उपरांत कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्द राजनीति को मुख्य रूप से प्रजा के कल्याण व उसकी उन्नति का ही प्रमुख साधन समझते थे। राजा प्रजा का ही प्रतिनिधि है, उसका प्रजा के साथ पितृवत् व्यवहार हो। प्रजा की इच्छां ही उसकी इच्छा हो।

महर्षि दयानन्द की यह स्पष्ट धारणा है कि कोई भी राजा अथवा शासक सारी सत्ता व शक्ति को अपने पास केन्द्रित रख के शासन–व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चला सकता। वे सत्ता के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। योग्य व अपने विश्वस्त व्यक्तियों को कार्य–भार सौंप कर सत्ता का संचालन अधिक अच्छी तरह से किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र में शिक्षा के विकास के लिए विद्यार्य सभा, न्याय व सामाजिक धर्म के निर्वाह के लिए धर्मार्य सभा तथा राज्य की रक्षा व्यवस्था के लिए राजार्य सभा के निर्माण का सुझाव दिया। ये तीनों पृथक्–पृथक् होकर के भी राष्ट्र की उन्नति में समान रूप से उत्तरदायी हैं। इसके अतिरिक्त राज्य में अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने राष्ट्र के व्यापारी वर्ग को आमन्त्रित किया है। अर्थ व्यवस्था के सम्बन्ध में शासन अथवा राजा के दो ही काम हैं– (क) व्यापारी को व्यापार सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान करना तथा (ख) कर लेकर राज्य की समुचित व्यवस्था करना।

हमें विश्वास है कि महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य सिद्धान्त न केवल वर्तमान में उपयोगी हैं, वरन् इनसे राष्ट्र की उन्नति की हमें एक भावी निश्चित दिशा प्राप्त हो सकती है। देश के संविधान का निर्माण भी महर्षि द्वारा प्रतिपादित राजनीति के सिद्धान्तों के आधार पर करने से राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

Scanned with CamScanner

हमारा प्रिय सत्यार्थप्रकाश

(1)

हमारे गुरु का आशीर्वाद, हमारे ऋषि का अमर विधान ।
मिटाकर जग का विषम विषाद, करेगा वही विश्व–कल्याण ।।
इष्ट फल देगा नित्य नवीन, कल्पपादप का पुष्पाभास ।
करे वह असत्–विचार विहीन, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(2)

निगम का आगम का अवतार, भव्य भावों का भुवि भण्डार ।
प्रेम के पथ का पारावार, ज्ञान का गुण का रम्यागार ।।
चमकते जिसमें रत्न अनेक, नित्य प्रति पाते विविध विकास ।
सत्य का सागर बस वह एक, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश"।।

(3)

विविध पंथों का तामस तोम, भरा था भू पर भ्रम भरपूर ।
अखिल आच्छादित था वर व्योम, न कर सकता था कोई दूर ।।
गगन में हुआ ज्ञान विस्फोट, किया अज्ञान अंधेरा नाश ।
असत् पर मारी भारी चोट, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

(4)

किया द्रुत खण्ड खण्ड पाखण्ड, चलाकर तेज तर्क का तीर ।
आक्रमण हुआ प्रभूत प्रखण्ड, दम्भगढ़ गिरा सहित प्राचीर ।।
विलखते हैं मतवादी आज, करें कैसे किसकी अब आश ।
असत् पर गिरा गर्ज कर गाज, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश ।।

(5)

"सूर्य" में रहे रश्मियाँ सात, यहाँ चौदह पूरे उल्लास ।
"सूर्य" करता न प्रकाशित रात, सतत यह देता ज्ञान प्रकाश ।।
"सूर्य" पर छाते घन बरसात, ग्रहण में होता भारी ह्रास ।
किन्तु "सत्यार्थ" सदा अभिजात, हमारा प्रिय "सत्यार्थ प्रकाश" ।।

-: रचयिता :-

(डॉ० सूर्यदेव शर्मा शास्त्री, साहित्यालंकार, एम. ए. डी. लिट्,)

अजमेर

Scanned with CamScanner

सुन्दर, साहित्य और सस्ते साहित्य प्रचार की योजना में सहयोग दीजिए

आर्य समाज अजमेर के निष्ठावान् विद्वान् डॉ. सूर्यदेव जी की 22 हजार रूपयों की उदार सहायता के कारण आर्यसमाज अजमेर ने 50 हजार रुपये व्यय करके सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थमाला के 15 भागों की 75 हजार प्रतियां (प्रथम संस्करण), लागत से भी कम मूल्य पर वितरित की हैं।

क. इसी ग्रन्थमाला के समान ऋषि दयानन्द तथा वैदिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में हिन्दी अंग्रेजी ट्रेक्सट।

ख. स्वामी जी के पत्र व्यवहार पर आधारित उनके कार्य और विचारों का संकलन।

ग. आर्य समाज अजमेर के गत 100 वर्षों का इतिहास जिसमें ऋषि दयानन्द के अन्तिम वर्षों से सम्बन्धित समाज के अभिलेखों से प्राप्त विवरण।

उपर्युक्त एवं आवरण पृष्ठ संख्या 2 पर लिखित साहित्य के प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाले सज्जनों के संबंध में प्रत्येक पुस्तक में निम्न प्रकार से उनके प्रति आभार व्यक्त किया जावेगा।

* पाँच सौ रुपये से एक हजार रुपये तक दान देने वालों के नाम का उल्लेख।
* एक हजार रुपये से तीन हजार रुपये तक देने वाले दान दाताओं का संक्षिप्त परिचय।
* तीन हजार रु. से ऊपर देने वाले दान दाताओं का चित्र और परिचय।

दयानन्द शोध पीठ के प्रकाशन

दयानन्द स्नातकोत्तर कॉलेज में दयानन्द शोध पीठ की स्थापना हो चुकी है। प्रति वर्ष उसकी ओर से नियमित रूप से महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों पर महत्त्वपूर्ण शोध तथा उपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जा रहा है।

इसका उद्धृत साहित्य निम्न प्रकार है :—

		मूल्य
1	महर्षि दयानन्द पत्रों के दर्पण में	50.00
2	नासीद सृष्टि विज्ञान एवं दशवाद रहस्य	
3	त्रयी विद्या	
4	सार्वभौम वैदिक धर्म	
5	महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं की प्रासंगिकता	

प्राप्ति स्थान – **आर्य समाज, अजमेर**

Scanned with CamScanner